कश्मीर में कैसे हुआ इस्लाम का प्रसार

- घनश्याम सक्सेना

ब्रिटेन में विजेता विलियम के आगमन तथा अरब में हजरत मोहम्मद और उनके इस्लाम के उद्भव के बहुत पहले कश्मीर में हिंदू धर्म का बोलबाला था और इसके भी बहुत पहले यानी 273 वर्ष ईसा पूर्व वहां बौद्ध धर्म का वर्चस्व था। हीनयान और महायान की बहस और व्याख्या का केन्द्र कश्मीर था। मगर आज कश्मीर में नब्बे प्रतिशत इस्लाम मतावलंबी बसते हैं।
धर्म परिवर्तन का यह चक्र आखिर कैसे घूमा। इसके लिए कश्मीर के संक्षिप्त इतिहास पर सरसरी नज़र डालना जरूरी है। शैव कश्मीर की किस्मत रिनचिन नामक एक बौद्ध शरणार्थी मीरशाह नामक एक मुस्लिम यायावर और बुलबुलशाह नामक एक सूफी संत ने कैसे बदल दी। यह जानने के लिए तेरह सदियों का काल-खंड छानना होगा।

कश्मीर का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उल्लेख सर्वप्रथम महाकवि कल्हण की राजतरंगिनी में मिलता है जो उन्होंने लगभग नौ सदी पहले 1148-49 में लिखी थी। इसमें उन्होंने नीलमत पुराण के हवाले से कश्मीर की उत्पत्ति की कथा का दिलचस्प वर्णन किया है।कल्प के प्रारंभ में यह घाटी महादेव की महाप्रिया सती के नाम पर सतीसर के रूप में विख्यात थी जिसकी रक्षा स्वयं नाग करते थे मगर जिसका निवासी जलोद्भव नामक राक्षस इन नागों को परेशान करने लगा। जब कश्यप मुनि हिमालय की तीर्थयात्रा पर थे तो उन्हें अपनी संतति इन नागों की जलोद्भव के हाथों दुर्दशा का पता चला। उन्होंने सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने विष्णु से कहा। मगर जलोद्भव को वरदान था कि वह जब तक जल में रहेगा तब तक उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अंततः विष्णु ने हलधर का सहारा लिया। उन्होंने अपने हल की नोक से बारामूला में छेद कर सतीसर को खाली कर दिया। भगवान विष्णु ने जलोद्भव का वध कर दिया। फिर तो कश्यप मुनि को यह स्थान इतना भाया कि वे वहीं रम गए। उन्हीं के नाम पर इस स्थल का नाम कश्यपमीर से कश्मीर पड़ गया।

कल्हण ने कश्मीर के इतिहास का प्रारंभ भगवान कृष्ण के समकालीन गोनंद से किया है। कश्मीर के तेईस शासक पांडवों के वंशज थे जिनकी वंशावली अर्जुन के प्रपौत्र हर्णदेव से प्रारंभ होती है। श्रीनगर में शंकराचार्य पहाड़ी के ऊपर बना मंदिर द्वापर युग का बताया जाता है- पृथ्वीनाथ कौल बमजई ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ कश्मीर में लिखा है।

सातवीं सदी में कश्मीर में ललितादित्य ने अपने सैंतीस वर्ष के शासन काल में कश्मीर की सीमाओं का विस्तार किया। महानदों का यात्रा-पथ तो उनके उद्गम से मुहाने तक सीमित हो सकता है मगर महाविजेताओं की विजय यात्रा तो असीम होती है कल्हण ने ललितादित्य के बारे में राजतरंगिणी में लिखा है। ललितादित्य शैव थे। उनके प्रधान सेनापति बौद्ध थे।

नवीं और दसवीं सदी में कश्मीर की सत्ता पुरुषों के हाथों में पड़ गई। सन् 1015 और 1021 के बीच महमूद गजनवी ने तोसमैदान दर्रे की तरफ से कश्मीर पर दो बार अभियान किया। मगर पीरपंजाल के दक्खिनी ढलान पर निर्मित लोहकोट के दुर्ग से उसे वापस लौट जाना पड़ा। कश्मीर की रक्षा उसके राजाओं से ज्यादा तो पहाड़ों और मौसमों ने की। अनंत नामक एक राजा तो ऐसा था जिसने पान खाने के अपने शौक की वजह से अपना राजमुकुट सन् 1062 में पद्मराज पनवाड़ी को ही दे दिया था कल्हण ने लिखा है।

1320 में जब सहदेव नामक राजा कश्मीर पर राज्य करता था तब कश्मीर के इतिहास ने करवट बदली। दुलाचा मंगोल ने अपने सत्रह हजार सवारों के बल पर घाटी को रौंद डाला। सहदेव किश्तवार में भागकर छिप गया। कश्मीर को उसके राजाओं ने भले ही असहाय छोड़ दिया हो लेकिन महादेव ने सदैव उसकी रक्षा की। आठ मास के बाद जब

ढुलाचा मंगोल एक सैनिक अभियान पर था तो बनिहाल दर्रे के पास एक भीषण बर्फीले तूफान ने उसे सेना सहित समूल नष्ट कर दिया।" पंडित जोनराज ने लिखा है जो कल्हण के बाद कश्मीर के इतिहास के प्रमुख स्त्रोत हैं। कश्मीर के अनेक राजा कायर थे। 1947-48 में कश्मीर पर कबायली हमले के समय तत्कालीन महाराज हरीसिंह का व्यवहार भी वीरतापूर्ण नहीं था।

मार्कोपोलो ने कश्मीर में इस्लाम की उपस्थिति का पहला उल्लेख 1277 में किया। मध्य एशिया में इस्लाम का उदय हो रहा था। मगर कश्मीर में इस्लाम सूफी संत बुलबुलशाह के माध्यम से आया जो सहदेव के राज में कश्मीर में थे और जिनकी मृत्यु 1327 में हुई।

चंगेजखान (1162-1227) तो अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद कश्मीर नहीं पहुंच सका लेकिन कुबलाह खान (1260-1294) कश्मीर के उस भाग पर काबिज हो गया जो आज भारतीय लद्दाख और पाक-अधिकृत बाल्तिस्तान है। कुबलाह की मृत्यु के बाद उसके राज्यपाल ल्हा-चेन के विरुद्ध ऐसा विद्रोह हुआ कि उसे जान और राज दोनों ही गंवाना पड़े।

ढुलाचा से पराजित सहदेव जब कश्मीर छोड़कर भाग गया तो वहां गगनगीर नामक एकमात्र स्थान ऐसा बचा जो ढुलाचा के हाथों में नहीं पड़ पाया। इस पर सहदेव के मंत्री और सेनापति रामचंद्र का आधिपत्य बना रहा। इसी समय जोजिला दर्रे से कश्मीर में एक नवयुवक शरणार्थी दाखिल हुआ जिसका नाम रिनचिन था। उसने सोनमार्ग घाटी पार की और वह जिस पहली बस्ती से मुखातिब हुआ वह गगनगीर ही थी। रिनचिन वहां के भंता-समुदाय का नेता था। उसे रामचंद्र ने शरण दी। इसी समय यहां शाहमीर नामक नौजवान यायावर अपने अनुयायियों सहित मौजूद था।

रामचंद्र ने रिनचिन और शाहमीर को जितना पहचाना उससे कहीं ज्यादा उन दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। वे पक्के दोस्त बन गए। उधर रामचंद्र की पुत्री कोटा और रिनचिन में प्रेम हो गया। ढुलाचा की मृत्यु के बाद रामचंद्र कश्मीर पर काबिज हो गया। मगर कश्मीर के लोग जिस महानायक की बाट जोह रहे थे वह उन्हें रिनचिन में मिलने वाला था। चूंकि रिनचिन और शाहमीर ही रामचंद्र की शक्ति थे। अतः उन्हें रामचंद्र को निपटाने में ज्यादा समय नहीं लगा। छह अक्टूबर 1320 को रिनचिन का धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। वह कश्मीर का सम्राट बना और रामचंद्र की पुत्री कोटा उसकी राजमहिषी। रिनचिन ने कश्मीर में शांति स्थापित की। व्यवस्था लौटी। रामचंद्र के परिवार से शत्रुता करने के बदले उन्हें सत्ता में साझीदार बनाया।

रिनचिन का कश्मीर में बड़ा मान था। मगर वह बौद्ध था। कश्मीरी जनता में अब बौद्ध वर्चस्व नहीं रह गया था। वहां शैव पंथ के हिंदुओं का बहुमत था। सूफी इस्लाम की सुगबुगी थी। एक दूरदर्शी राजनेता होने के नाते रिनचिन जानता था कि यद्यपि वहां की जनता उसे अपना शासक मानती है मगर विधर्मी होने के कारण उसे अपना महानायक नहीं मानेगी। इसलिए उसने भगवान शिव की पूजा करने की ठान ली और शैव-संप्रदाय के महाआचार्य देवस्वामी से दीक्षा का अनुरोध किया। वह हिंदू धर्म ग्रहण करना चाहता था। शाहमीर भी इस मसलहत में उसके साथ था।

श्रीनगर में शैव-संप्रदाय के आचार्यों, पंडितों, विचारकों, शास्त्रियों और मीमांसकों की एक वृहत सभा का आयोजन किया गया। रिनचिन के आवेदन पर विचार हुआ। अनेक मत-मतांतर उभरे। अनेक प्रश्न उठे। क्या रिनचिन हिंदू धर्म ग्रहण कर सकता है 'हिंदू बनने पर उसे किस जाति का माना जाएगा' नहीं। धर्मांतरण करके कोई हिंदू नहीं बन सकता।शैव मठाधीशों ने रिनचिन को टके-सा जवाब दे दिया।

तभी मीरशाह को मौका मिल गया। उसने कहा- दोस्त। अगर हिन्दू तुम्हें कबूल करने को तैयार नहीं हैं तो इस्लाम के आगोश में तुम्हारा स्वागत है।"यह किस्सा सरदार के.एम. पनिक्कर ने अपनी 1948 में प्रकाशित पुस्तक ए

स्टडी ऑफ कश्मीर एंड जम्मू में बयान किया है। क्रेसेंट ओवर कश्मीर" के लेखक एडवर्ड लिरिल ने भी इसकी पुष्टि की है।

बुलबुलशाह वहां पहले से ही मौजूद थे। उन्होंने रिनचिन को इस्लाम की दीक्षा दे दी। बौद्ध शरणार्थी रिनचिन सुल्तान सदरुद्दीन के नाम से कश्मीर के बादशाह बन गए। उनके महल के नीचे जो बोदरो-मस्जिद बनी वह बौद्धों और मुसलमानों दोनों का तीर्थ है। श्रीनगर के पांचवें पुल के नीचे बुलबुल लंगर के नाम से मशहूर कश्मीर की पहली मस्जिद बनी। जब सम्राट प्रधानमंत्री और प्रधान सेनापति तीनों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया तो फिर प्रजाजनों के लिए और रास्ता ही क्या था। यह आख्यान जितने उत्साह से लद्दाखी लोकगीतों में मिलता है उसी भाव से हैदर मलिक लिखित तहरीके-कश्मीर" में भी वर्णित है। जाने-माने पत्रकार-लेखक एम.जे. अकबर ने अपनी किताब कश्मीर विहाइंड वेल में लिखा है कि शेख अब्दुल्ला ने उन्हें बताया था कि शेख साहब के दादा स्वयं कश्मीरी ब्राह्मण थे।

कश्मीर के इस्लाम को लेकर एक घटना का वर्णन पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द डिस्कवरी ऑफ इंडिया में किया है : कश्मीर में धर्मांतरण के नतीजतन हालांकि 95 प्रतिशत आबादी इस्लाम कबूल कर चुकी थी मगर उसने अपने पुराने हिंदू तौर-तरीके बरकरार रखे थे। उन्नीसवीं सदी में वहां के राजा महाराजा रणवीर सिंह को बताया गया कि अब इनमें से अधिकांश लोग पुनः सामूहिक रूप से हिंदू धर्म में लौटना चाहते हैं। उन्होंने एक शिष्टमंडल काशी भेजकर वहां के पंडितों से मार्गदर्शन मांगा। पंडितों ने तो धर्मांतरण के इस प्रस्ताव पर विचार करने से ही इंकार कर दिया और यह मामला यहीं समाप्त हो गया।

कश्मीर के एक राजा रिनचिन को हिंदू धर्म ने जो उपेक्षा भरा और नकारात्मक जवाब चौदहवीं सदी में दिया था। वही कश्मीर के एक और राजा को उन्नीसवीं सदी में भी दिया गया। पंडित नेहरू ने अपनी किताब में जब इस ऐतिहासिक वाक्ये का जिक्र किया तो उन पर हिंदूवादी होने का आरोप लगाया गया था।

सन् 1323 में रिनचिन यानी सदरुद्दीन की मृत्यु हो गई। सहदेव के भाई उदयनदेव ने सिंहासन पर अधिकार जताया। रिनचिन का पुत्र हैदर नाबालिग था। कोटा रानी ने उदयनदेव से विवाह करके स्वयं के लिए राजमहिषी का पद पुनः प्राप्त कर लिया। जब दुलाचा मंगोल ने कश्मीर पर हमला किया था तो सहदेव भाग गया था। इस बार अचाला तुर्क ने हमला कर दिया। उदयनदेव भाग गया। मगर कोटा रानी ने शाहमीर की सहायता से अचाला को मार भगाया।

सन् 1338 में शिवरात्रि के दिन उदयनदेव का देहांत हो गया जो नाममात्र के शासक थे। अब की बार पुनः कोटा रानी ने पहल करके सिंहासन हासिल कर लिया। **(प्रस्तुति: मनुज फीचर सर्विस)**

नोट: मनुज फीचर में छपे लेखों के विचार लेखक के अपने हैं। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। मनुज फीचर सर्विस का उल्लेख अवश्य करें।